दीदीगम बिक्षपति व अन्य

विरुद्ध

आंध्र प्रदेश राज्य

29 नवंबर, 2007

[न्यायमूर्ति डॉ. अरिजीत पसायत एवं न्यायमूर्ति तरुण चटर्जी]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973:

धारा 482- आपराधिक कार्यवाहियाँ अपराध अंतर्गत धारा 306 भारतीय दंड संहिता हेतु- सुसाइड नोट के आधार पर- कार्यवाही को अपास्त करने के लिए याचिका- खारिज- अपील, धारित किया गया: याचिका उचित रूप से खारिज की गई- सुसाइड नोट से मामला स्पष्टतया बनना प्रकट होता है।

धारा 482- अंतर्निहित क्षेत्राधिकार- क्षेत्र व उद्देश्य- धारित किया गया: ऐसी शक्तियाँ न्याय प्रशासन हेतु प्रदान की गई है- यह विवेकीय शक्ति है, परंतु इसे दुर्लभतम मामलों में ही संयम के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए।

विधिक सिद्धांत- जो कोई किसी वस्तु का अनुदान देता है, उसे भी अनुदान देने वाला समझा जाता है, जिसके बिना अनुदान का कोई प्रभाव

नहीं होगा।

सत्र न्यायाधीश के समक्ष अपीलार्थियों के विरुद्ध अपराध अंतर्गत धारा 306 भारतीय दंड संहिता के अधीन कार्यवाहियाँ प्रारंभ हुईं। मृतक ने एक सुसाइड नोट में अपीलार्थियों को आत्महत्या का उत्तरदायी ठहराते हुए उन परिस्थितियों का स्पष्ट उल्लेख किया था, जिनके कारण उसने आत्महत्या की। अपीलार्थियों ने एक याचिका अंतर्गत धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता कार्यवाहियों को अपास्त करने के लिए प्रस्तुत की। उच्च न्यायालय ने सुसाइड नोट को दृष्टिगत रखते हुए याचिका निरस्त की जिसके कारण यह अपील प्रस्तुत की गई।

अपील को खारिज करते हुए न्यायालय द्वारा-

अभिनिर्धारित: 1 सुसाइड नोट स्पष्ट रूप से उस पृष्ठभूमि को दर्शाता है जिसमें आहत/ मृतक ने आत्महत्या करने का गंभीर कदम उठाया। यह ऐसा मामला नहीं है जहां अभियुक्त के किसी भी कृत्य की भूमिका न हो। अतः, उच्च न्यायालय ने धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता की शक्ति का प्रयोग करने की प्रार्थना को उचित रूप में अस्वीकार किया है।[चरण संख्या 11 एवं 12] [701-**H**; 702-**A**, **C**]

नेताई दत्त बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2005) **AIR SCW** 1326

2.1 न्यायालय अभिव्यक्त विधिक प्रावधानों के अतिरिक्त अंतर्निहित

शक्तियों के धारक हैं जो विधि द्वारा उन पर अधिरोपित दायित्व एवं कार्यों के उचित निर्वहन के लिए आवश्यक हैं। यही सिद्धांत धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता में परिलक्षित होता है जो उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सुनिश्चित कर उन्हें संरक्षण मात्र प्रदान करता है। सभी न्यायालय, दीवानी या आपराधिक, किसी भी अभिव्यक्त प्रावधान के अभाव में, अपने संविधान में अंतर्निहित, उन सभी शक्तियों का प्रयोग करने में सक्षम है जो उचित रूप से न्याय प्रशासन के सिद्धांत के अधीन सही कार्य करने अथवा गलत कार्य को सही करने के लिए आवश्यक है।" जो कोई किसी चीज का अनुदान देता है, उसे भी अनुदान देने वाला समझा जाता है, जिसके बिना अनुदान का कोई प्रभाव नहीं होगा।" [चरण संख्या 7] [698-F, H]

2.2 धारा 482 उच्च न्यायालय को कोई नवीन शक्ति प्रदान नहीं करती है। यह मात्र उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति को संरक्षित करती है जो उच्च न्यायालय में दंड प्रक्रिया संहिता के अधिनियमितीकरण से पूर्व निहित थी। यह उन तीन परिस्थितियों की संभावना व्यक्त करती है जिनके अधीन अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है, यथा-

i दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन दिए गए किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए

ii न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने के लिए

iii न्याय के उद्देश्यों की किसी भी प्रकार पूर्ति करने के लिए

अंतर्निहित क्षेत्राधिकार को शासित करने वाला कोई भी कठोर नियम लागू करना ना तो संभव है और ना ही अपेक्षित है। कोई भी प्रक्रियात्मक विधिक संविधि सभी संभावित मामलों के लिए व्यवस्था प्रदान नहीं कर सकती है। [चरण संख्या 7] [698-D, E]

2.3 धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन प्रदत्त क्षेत्राधिकार का उपयोग करते समय उच्च न्यायालय सामान्यतया इस संबंध में कोई जांच प्रारंभ नहीं करेगा कि पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं, अथवा ऐसी साक्ष्य के युक्तियुक्त विवेचन से दोष सिद्धि होगी या नहीं। यह कार्य विचारण न्यायालय का है और अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय इस रूप में कार्य नहीं करता है। उक्त धारा के अधीन प्राप्त अंतर्निहित अधिकारिता ध्यान पूर्वक व सावधानी से प्रयुक्त की जानी चाहिए और इस शक्ति का प्रयोग तभी न्यायोचित है जब उसे उपबंध में प्रदत परिस्थितियां एवं परीक्षण अनुमत करें। इस शक्ति का प्रयोग न्याय प्राप्ति के कारण, वास्तविक व सारभूत न्याय प्रशासन के लिए किया जाना चाहिए जिसके लिए ही न्यायालयों का अस्तित्व है। [चरण संख्या 7 एवं 9] [698-H; 699-A, B; H; 700-A]

2.4 उच्च न्यायालय को धारा 482 के अंतर्गत प्राप्त शक्ति व्यापक हैं और शक्तियों की व्यापकता और प्रचुरता उसके प्रयोग में अत्यधिक

सावधानी की अपेक्षा करती है। इस शक्ति का प्रयोग सावधानी पूर्वक दुर्लभतम मामलों में ही किया जाना चाहिए। न्यायालय ध्यान पूर्वक यह विचार करें कि इस शक्ति का प्रयोग करने का निर्णय ठोस सिद्धांतों पर आधारित हो। अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग किसी वैध अभियोजन को दबाने के लिए नहीं होना चाहिए। राज्य का सर्वोच्च न्यायालय होते हुए उच्च न्यायालय को सामान्यतया किसी मामले में प्रथम दृष्टया निर्णय पारित करने से विरत रहना चाहिए। जहां संपूर्ण तथ्य अपूर्ण और अस्पष्ट हो, और जब न्यायालय के समक्ष साक्ष्य को एकत्रित कर प्रस्तुत न किया गया हो, साथ ही अंतर्निहित विवाद बिंदु, चाहे तथ्यात्मक हों या विधिक, इस परिमाण के हों जिनका पर्याप्त सामग्री के बिना सही दृष्टिकोण से मूल्यांकन नहीं किया जा सकता हो। स्वाभाविक है कि इस संबंध में कोई ठोस तथा दृढ़ नियम लागू नहीं किया जा सकते की किन मामलों में उच्च न्यायालय द्वारा अपने इस असामान्य क्षेत्राधिकार का प्रयोग कार्यवाहियों को किसी भी प्रक्रम पर अपास्त करने के लिए किया जाएगा। [चरण संख्या 9 और 10] [700-**D**; 701-**D**; **E-G**]

हरियाणा राज्य बनाम भजनलाल [1992] सप्लीमेंट्री 1 335

आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य **AIR** [1960] **SC** 866;

उड़ीसा राज्य बनाम सरोज कुमार साहू [2005] 13 **SCC** 540 और

मीनू कुमारी बनाम बिहार राज्य AIR [2006] SC 1937 निर्दिष्ट

आपराधिक अपील संख्या:1643/2007

आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद के निर्णय व आदेश दिनांक 29.3.2006 से उत्पन्न जोआपराधिक याचिका संख्या 2758/2002 में पारित किया गया।

अधिवक्ता जी. वी. चौधरी एवं शिवराज चौधरी अपीलार्थीगण की ओर से

अधिवक्ता पी. विनय कुमार एवं डी. भारती रेड्डी प्रत्यार्थीगण की ओर से

निर्णय न्यायमूर्ति डॉ. अरिजीत पसायत द्वारा पारित किया गया

1. अनुमति दी गई।

2. इस अपील में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय को चुनौती दी गई है, जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में ' संहिता') की धारा 482 के अधीन अपीलार्थीगण द्वारा प्रस्तुत याचिका को खारिज कर दिया गया था। भारतीय दंड संहिता 1860 (संक्षेप में आईपीसी) की धारा 306 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उनके विरुद्ध शुरू की गई अतिरिक्त महानगर सत्र न्यायाधीश संख्या

07, हैदराबाद की पत्रावली पर वर्ष 2001 की SC संख्या 498 में कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना की गई थी।

3. जिन आरोपों के आधार पर उक्त कार्यवाही शुरू की गई वे मूलत: निम्न प्रकार है-;

बुदिदा कृष्णमूर्ति (बाद में 'मृतक' के रूप में संदर्भित) की अपीलकर्ता (ए1) के साथ घनिष्ठ मित्रता थी। लगभग चार साल पहले उन्होंने मृतक और अन्य लोगों को अपनी फाइनेंस फर्म में फील्ड ऑफिसर के रूप में नियुक्त किया था; उमा किराया खरीद और वित्त। जबकि, अपीलकर्ता नंबर 1 मेकाला रवि और मेकाला वेणु द्वारा संचालित कनक महालक्ष्मी रियल एस्टेट वेंचर्स में भागीदार के रूप में शामिल हुआ। मृतक और दो अन्य फील्ड अधिकारी अर्थात्; बुदिदा लक्ष्मैया (LW7) और थंड्रा मल्लैया (LW8) ने उस समूह में लगभग 15 भूखंड कोम्मईपल्ली ग्रामीणों को बेचे और उनसे विभिन्न राशि एकत्र की और अपीलकर्ता नंबर 1 को सौंप दी। चूंकि उन्होंने कनक महालक्ष्मी रियल एस्टेट वेंचर्स को पैसे का भुगतान नहीं किया, इसलिए अन्य साझेदारों ने उन व्यक्तियों के पक्ष में भूखंडों का पंजीकरण नहीं किया, जिन्होंने मृतक को पैसे का भुगतान किया था। चूंकि मृतक ने संभावित खरीदारों के पक्ष में भूखंडों के पंजीकरण की मांग की थी, इसलिए वह (अपीलकर्ता नंबर 1) अपने परिवार के साथ जनगांव से भाग गया और अपने ससुराल में रह रहा था। मृतक वहां गया और भूखंडों

की रजिस्ट्री की मांग की, लेकिन अपीलकर्ताओं ने उसे गंदी भाषा में गालियां दीं और आरोपियों ने न तो भूखंडों की रजिस्ट्री की और न ही राशि वापस की। मानसिक प्रताड़ना और प्लॉट खरीदने वालों का दबाव न सह पाने के कारण मृतक ने दिनांक 17.4.2001 की रात्रि में किसी अज्ञात ट्रेन के नीचे कटकर आत्महत्या कर ली और एक सुसाइड नोट भी छोड़ा जिसमें उसने आत्महत्या करने का कारण बताया। मृतक वहां गया और भूखंडों की रजिस्ट्री की मांग की, लेकिन अपीलकर्ताओं ने उसे गंदी भाषा में गालियां दीं और आरोपियों ने न तो भूखंडों की रजिस्ट्री की और न ही राशि वापस की। मानसिक प्रताड़ना और प्लॉट खरीदने वालों का दबाव न सह पाने के कारण मृतक ने दिनांक 17.4.2001 की रात्रि में किसी अज्ञात ट्रेन के नीचे कटकर आत्महत्या कर ली और एक सुसाइड नोट भी छोड़ा जिसमें उसने आत्महत्या करने का कारण बताया था।

4. उच्च न्यायालय के समक्ष तर्क यह था कि आईपीसी की धारा 306 के तहत अपराध गठित करने के लिए आवश्यक सामग्री विद्यमान नहीं हैं। उकसाने या दुष्प्रेरण का कोई तत्व नहीं है। उच्च न्यायालय ने सुसाइड नोट में दिए गए बयान को संज्ञान में लेते हुए उक्त दलील को स्वीकार नहीं किया। उच्च न्यायालय ने महसूस किया कि यह उपयुक्त मामला नहीं है जहां संहिता की धारा 482 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाना अपेक्षित है।

5. अपील के समर्थन में अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने कहा कि उकसाने का कोई प्रश्न ही नहीं है। केवल इसलिए कि उस व्यक्ति ने आरोपी द्वारा की गई टिप्पणियों या कथनों के कारण अपमानित होकर आत्महत्या कर ली, यह आईपीसी की धारा 306 के तहत दंडनीय अपराध का गठन नहीं करता है। इसलिए, उच्च न्यायालय को कार्यवाही रद्द कर देनी चाहिए। नेताई दत्ता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2005 एआईआर एससीडब्ल्यू 1326) के इस न्यायालय के फैसले को मजबूत रूप से निर्दिष्ट किया गया। इसके अलावा यह प्रस्तुत किया गया कि अपीलकर्ता संख्या 1 की पत्नी अपीलकर्ता संख्या 2, का केवल एक अस्पष्ट संदर्भ था, और इस आधार पर, जहां तक उसका संबंध है, अपील स्वीकार करने योग्य है।

6. जवाब में, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि सुसाइड नोट स्पष्ट रूप से अपीलकर्ताओं के विभिन्न कृत्यों को संदर्भित करता है जिसके कारण पीड़ित द्वारा आत्महत्या करने का दुर्भाग्यपूर्ण कदम उठाया गया था और किसी भी तरह से यह एक उपयुक्त मामला नहीं है जहां क्षेत्राधिकार के तहत धारा 482 का प्रयोग किया जाना है।

7. धारा 482 उच्च न्यायालय को कोई नई शक्तियाँ प्रदान नहीं करती है। यह केवल उस अंतर्निहित शक्ति को बचाता है जो संहिता के लागू होने से पहले न्यायालय के पास थी। इसमें तीन परिस्थितियों की परिकल्पना की गई है जिसके तहत अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया

जा सकता है, अर्थात्,

(i) संहिता के तहत किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए

(ii) अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, और

(iii) अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए। किसी भी अनम्य नियम को निर्धारित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय है जो अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के अभ्यास को नियंत्रित करे।

प्रक्रिया से संबंधित कोई भी विधायी अधिनियम संभवतः उत्पन्न होने वाले सभी मामलों के लिए प्रावधान नहीं कर सकता है। इसलिए, न्यायालयों के पास कानून के स्पष्ट प्रावधानों के अलावा अंतर्निहित शक्तियां हैं जो कानून द्वारा उन पर लगाए गए कार्यों और कर्तव्यों के उचित निर्वहन के लिए आवश्यक हैं। यह वह सिद्धांत है जो उस अनुभाग में अभिव्यक्ति पाता है जो केवल उच्च न्यायालयों की अंतर्निहित शक्तियों को पहचानता है और संरक्षित करता है। सभी अदालतें, चाहे वे दीवानी हों या फौजदारी, उनके संविधान में निहित किसी स्पष्ट प्रावधान के अभाव में, ऐसी सभी शक्तियाँ जो न्याय प्रशासन के दौरान सही करने और गलत को पूर्ववत करने के लिए आवश्यक हैं, इस सिद्धांत पर **"क्वांडो लेक्स अलियाउइड एलिकुई कॉन्सेडिट, कॉन्सेडेरे विदेतुर एट आईडी साइन गुओ रेस आईपीएसए एसे नॉन पोटेस्ट" (जब कानून किसी व्यक्ति को देता है, कुछ**

भी यह उसे वह देता है जिसके बिना उसका अस्तित्व नहीं हो सकता)। इस धारा के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय, अदालत अपील या पुनरीक्षण अदालत के रूप में कार्य नहीं करती है। इस धारा के तहत निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग हालांकि व्यापक रूप से किया जाना चाहिए, लेकिन इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए और केवल तभी किया जाना चाहिए जब ऐसा प्रयोग धारा में विशेष रूप से निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित हो। इसका प्रयोग पूर्व **डेबिटो जस्टिटिया (न्याय के दायित्व)** के प्रशासन के लिए वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए किया जाना चाहिए जिसके लिए ही अदालतें मौजूद हैं। न्यायालय का अधिकार न्याय की उन्नति के लिए मौजूद है और यदि अन्याय उत्पन्न करने के लिए उस अधिकार का दुरुपयोग करने का कोई प्रयास किया जाता है, तो न्यायालय के पास दुरुपयोग को रोकने की शक्ति है। यह अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा कि किसी भी एेसी कार्रवाई की अनुमति देना जिसके परिणामस्वरूप अन्याय होगा और न्याय की प्रगति को रोका जा सकेगा, शक्तियों का प्रयोग करते हुए अदालत द्वारा किसी भी कार्यवाही को रद्द करना उचित होगा यदि उसे लगता है कि इसे शुरू करना/जारी रखना अनुचित है। न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग या इन कार्यवाहियों को रद्द करना अन्यथा न्याय के उद्देश्य की पूर्ति करेगा। जब रिपोर्ट द्वारा किसी अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है, तो अदालत तथ्य के प्रश्न की जांच कर सकती है। जब किसी रिपोर्ट को रद्द करने की मांग की जाती है, तो

रिपोर्ट में क्या आरोप लगाया गया है और क्या आरोप पूरी तरह से स्वीकार कर लिए जाने पर भी कोई अपराध बनता है, इसका आकलन करने के लिए सामग्रियों पर गौर करने की अनुमति है।

8. **आरपी कपूर बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1960 एससी 866** में इस न्यायालय ने मामलों की कुछ श्रेणियों का सारांश दिया है जहां कार्यवाही को रद्द करने के लिए अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है और किया जाना चाहिएः-

(i) जहां यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि प्रकरण संस्थित करने या जारी रखने के खिलाफ कोई कानूनी बाधा है, उदाहरण के लिए स्वीकृति का अभाव;

(ii) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में प्रथम दृष्टया देखेने से ही तथा उसे उसी रूप में पूरी तरह से स्वीकार करने पर वे कथित अपराध का गठन नहीं करते हैं;

(iii) जहां आरोप/आक्षेप एक अपराध का गठन करते है, लेकिन कोई कानूनी सबूत पेश नहीं किया गया है या सबूत स्पष्ट रूप से या स्पष्ट रूप से आरोप साबित करने में विफल रहता है।

9. अंतिम श्रेणी के मामलों के बीच इस अंतर को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है जहां कोई कानूनी सबूत नहीं है या जहां ऐसे सबूत हैं जो

स्पष्ट रूप से लगाए गए आरोपों से पूर्णतः असंगत हैं, और ऐसे मामले जहां कानूनी सबूत हैं जो, विवेचन पर, आरोपों का समर्थन कर भी सकते हैं और नहीं भी। संहिता की धारा 482 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय आम तौर पर यह जांच शुरू नहीं करेगा कि प्रश्नगत साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं या इसकी उचित विवेचना पर आरोप टिक पाएगा या नहीं। यह विचारण न्यायाधीश का कार्य है। न्यायिक प्रक्रिया उत्पीड़न या अनावश्यक उत्पीड़न का साधन नहीं होनी चाहिए। न्यायालय को विवेक का प्रयोग करने में सतर्क और विवेकपूर्ण होना चाहिए और आदेशिका जारी करने से पहले सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए, ऐसा न हो कि यह किसी निजी शिकायतकर्ता के हाथों में किसी भी व्यक्ति को अनावश्यक रूप से परेशान करने के लिए प्रतिशोध लेने का एक साधन बन जाए। साथ ही यह धारा किसी अभियुक्त को अभियोजन को संकीर्ण करने और उसकी अचानक मृत्यु कराने के लिए सौंपा गया एक उपकरण नहीं है। संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग का दायरा और मामलों की श्रेणियां जहां उच्च न्यायालय किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए संज्ञेय अपराधों से संबंधित अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है, इस न्यायालय द्वारा **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल (1992 पूरक (1) 335)** में कुछ विस्तार से निर्धारित किया गया था। हालाँकि, सावधानी का एक नोट जोड़ा गया था कि शक्ति का प्रयोग संयम

से किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में। इस न्यायालय द्वारा इंगित उदाहरणात्मक श्रेणियां इस प्रकार हैं:

"(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके देखने मात्र पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनाए या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनाए.

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफआईआर के साथ संलग्न अन्य सामग्री में आक्षेप, यदि कोई हो, एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, तो मजिस्ट्रेट के आदेश के अलावा संहिता की धारा 156 (1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में उचित ठहराया जा सकता है।

(3) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए

निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी अपराध के घटित होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जहां एफआईआर में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं, बल्कि केवल गैर-संज्ञेय अपराध हैं, वहां मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है, जैसा कि संहिता की धारा 155 (2) के तहत माना गया है।

(5) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने निराधारा और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं कि उनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां है संहिता या किसी संबंधित अधिनियम (जिसके तहत एक आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है) के किसी भी प्रावधान में प्रकरण संस्थित करने और कार्यवाही जारी रखने या जहां कोई विशिष्ट प्रावधान है, में शामिल एक स्पष्ट कानूनी रोक हो, या संबंधित अधिनियम, पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता हो।

(7) जहां किसी आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से आरोपी पर प्रतिशोध लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।"

10. जैसा कि ऊपर बताया गया है, धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के पास जो शक्तियाँ हैं वे बहुत व्यापक हैं और शक्ति की प्रचुरता उसके प्रयोग में बहुत सावधानी की आवश्यकता चाहती है। न्यायालय को यह देखने में सावधानी बरतनी चाहिए कि इस शक्ति के प्रयोग में उसका निर्णय ठोस सिद्धांतों पर आधारित हो। किसी वैध अभियोजन को दबाने के

लिए अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। किसी राज्य का सर्वोच्च न्यायालय होने के नाते उच्च न्यायालय को आम तौर पर ऐसे मामले में प्रथम दृष्टया निर्णय देने से बचना चाहिए जहां पूरे तथ्य अधूरे और धुंधले हों, खासकर तब जब साक्ष्य एकत्र नहीं किए गए हों और न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किए गए हों और इसमें शामिल मुद्दे, चाहे तथ्यात्मक हों या कानूनी, इस पैमाने पर हों जिन्हें पर्याप्त सामग्री के बिना उनके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा जा सकता हो। निश्चय ही कोई ठोस या दृढ़ नियम इस संदर्भ में नहीं बनाया जा सकता जिनमें उच्च न्यायालय किसी भी प्रक्रम पर कार्यवाही अपास्त करने की इस असामान्य अधिकारिता का प्रयोग करे, **उड़ीसा राज्य बनाम सरोज कुमार साहू (2005) 13 एससीसी 540 और मीनू कुमारी बनाम बिहार राज्य एआईआर 2006 एससी 1937 देखें)**

11. सुसाइड नोट में स्पष्ट रूप से उस पृष्ठभूमि का उल्लेख है जिसमें पीड़ित ने आत्महत्या करके अपनी जान लेने जैसा गंभीर कदम उठाया। यह ऐसा मामला नहीं है जहां आरोपी के किसी कृत्य का कोई संदर्भ नहीं है। नेताई दत्ता के मामले (उपरोक्त) पैरा 6 में इसे इस प्रकार देखा गया:

> "6. सुसाइड नोट में, दो स्थानों पर अपीलकर्ता के नाम का उल्लेख करने के अलावा, किसी भी कार्य या घटना

का कोई संदर्भ नहीं है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता पर कोई कार्य जानबूझकर करने या चूक करने या जानबूझकर मृतक प्रणव कुमार नाग की आत्महत्या में सहायता करने या उकसाने का आरोप लगाया गया हो। ऐसा कोई मामला नहीं है कि अपीलकर्ता ने किसी भी साजिश में कोई भूमिका निभाई है, जिससे अंततः मृतक प्रणब कुमार नाग को आत्महत्या के लिए उकसाया या ऐसा परिणाम दिया।"

12. वर्तमान मामले में सुसाइड नोट में स्पष्ट रूप से आरोपी-अपीलकर्ता के कृत्यों और उनके द्वारा निभाई गई भूमिकाओं का उल्लेख है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग की प्रार्थना को सही ढंग से खारिज किया है। हम यह स्पष्ट करते हैं कि वर्तमान अपील को खारिज करते समय उच्च न्यायालय और हमारे द्वारा की गई कोई भी टिप्पणी मुकदमे में निर्णायक कारक मानी जाएगी।

अपील खारिज।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी पुरवा चतुर्वेदी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।